नहीं महसूस हो सकती। उसी प्रकार चित्र के घोड़े को घोड़ा मान लेने पर भी उस पर सवारी नहीं हो सकती। मिष्ठान का चित्र देख लेने से उसका स्वाद नहीं मिल सकता।

भट्टनायक का भुक्तिवाद या भोगवाद :-

सांख्यमतावलंबी आचार्य भट्टनायक के अनुसार रस न तो अनुमित होता है न अभिव्यक्त और न तो उत्पन्न ही। लोल्लट के उत्पत्तिवाद और अनुमितिवाद का खंडन तो उन्होंने किया ही है, आनंदवर्धन का ध्वनि और व्यंजन का सिद्धांत भी उन्हे ग्राह्य नहीं था। इसीलिए उन्होंने अभिव्यक्ति सिद्धांत का भी विरोध किया। उन्होंने अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं और साधारणीकरण की कल्पना करके रसानुभूति की प्रक्रिया के रहस्य का उद्घाटन किया है। भट्टनायक रस को अनुमेय या प्रतीत नहीं मानते वरन् भोज्य मानते हैं। संयोग का तात्पर्य भोज्य-भोजक भाव है और निष्पत्ति का तात्पर्य मुक्ति है। उन्होंने रसानुभूति की प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ मानी हैं- अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व अभिधा व्यापार के द्वारा प्रेक्षक या सहृदय, शब्दों का अर्थ समझता है और समस्त प्रसंगों की विशिष्ट स्थिति का ज्ञान कर लेता है, फिर भावकत्व व्यापार द्वारा विभावादी का साधारणीकरण हो जाता है और भावों की पात्र-विशिष्टता समाप्त हो जाती है तथा सामाजिक की मनोवृत्ति, विभावादि के विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किये जाने से निर्वैयक्तिक हो जाती है।

आलंबन और उद्दीपन सर्वसाधारण की अनुभूति को स्पर्श करने वाली विशेषता धारण कर लेते हैं।

भट्टनायक ने साधारणीकरण के द्वारा रसानुभूति के रहस्य को स्पष्ट करके बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। भट्टनायक ध्वनिविरोधी आचार्य थे, अतः उन्होंने भावकत्व और भोजकत्व की कल्पना की जिसकी आवश्यकता ध्वनिवादियों को स्वीकार नहीं है। भट्टनायक के मत के शास्त्रीय दृष्टिकोण से विरोधी होते हुए भी रसानुभूति के विश्लेषण में अभिनव गुप्त ने उनके साधारणीकरण के सिद्धांत का विकास किया है।

अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद :-

अभिनव के मत को अभिव्यक्तिवाद कहा जाता है। वे रस की उत्पत्ति, अनुमिति और भुक्ति को स्वीकार न कर भरतसूत्र के 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ 'अभिव्यक्ति' करते है और 'संयोगात्' का अर्थ 'व्यंग्य' 'व्यंजक' 'संबंधात्' किया है। इनके अनुसार विभावादि व्यंजक होते है और स्थायी भाव व्यंग्य। व्यंजना के विभावन व्यापार से विभावों और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है अर्थात् नायक आदि अनुकार्यों में भाव, वैशिष्ट्य-हीन हो जाते है तथा सहृदय के हृदयस्थ वासनारूप भावों को जगाते हैं।

अभिनवगुप्त का मत है कि 'न हीतच्चित्त वृत्तिवासनाशून्यः कश्चित्प्राणीभवति' अर्थात् कोई भी मनुष्य वासनाशून्य नहीं होता। यह वासना गुप्तावस्था में पड़ी रहती है और जब अभिनय से काव्यार्थ प्रकाशित होते है तो साधारणीकरण द्वारा यह वासना जाग उठती है और निर्वैयक्तिक रूप से

अभिव्यक्त होकर आनंद का आस्वाद कराती है। यही रसास्वाद है।

अपने दार्शनिक मत के आग्रह की दृढ़ता होने पर भी अभिनवगुप्त का यह मत मनोवैज्ञानिक आधार लिए हुए है और रसानुभूति की प्रक्रिया का यथार्थवादी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आगे के अधिकांश विद्वानों ने इसका आधार ग्रहण किया है। वास्तव में अभिनवगुप्त का यह मत भरत के सूत्र की सबसे अधिक संगत व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह रसानुभूति अलौकिक इसलिए कही जाती है क्योंकि जीवन की अन्य सामान्य अनुभूतियों से यह अपनी निर्वैयक्तिकता, उदात्तता एवं सामाजिकता के कारण भिन्न होती है। इसमें संबंध विशेष का परिहार हो जाता है। यह रस सहृदय संवेद्य है। इस प्रकार विभावादि और सहृदय दोनों ही के व्यक्ति संबंध का परिहार हो जाने से अखण्ड रस का आनंद प्राप्त होता है।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट - प्रोफेसर
हिन्दी - विभाग
डी. के. कालेज डुमराँव
बक्सर (बिहार)